जैन आगमों में नारी

—डॉ० विजय कुमार शर्मा

आगम साहित्य का उद्भव और विकास—ई० पू० छठी शताब्दी न केवल भारतवर्ष के लिये अपितु समस्त संसार के लिए अत्यन्त ही उथल-पुथल का युग रहा है। धार्मिक मत-मतान्तर, दार्शनिक विवाद, सामाजिक परिवर्तन, रूढ़िवाद का प्राबल्य आदि-आदि तत्कालीन समाज की विशेषता रही है। साधारण जन इन उतार-चढ़ावों, मत-मतान्तरों से खिन्न और पीड़ित थे। ऐसी ही विप्लवमयी अवस्था में भगवान् बुद्ध एवं महावीर का आविर्भाव हुआ। यद्यपि इन दोनों ने ही राज्य-वैभव का परित्याग जाति, रोग, शोक, वृद्धावस्था एवं मृत्यु के दुःखों से छुटकारा पाने के मार्ग की खोज हेतु किया था परन्तु तत्कालीन मत-मतान्तर-वाद एवं सामाजिक उत्पीड़न भी उन्हें घर से बेघर करने में कम सहायक नहीं हुए थे। अतः एक ओर दोनों का उद्देश्य जाति-जरा, मृत्यु से पीड़ित प्रजा को सदा सर्वदा सुख की स्थिति का मार्ग दिखाना था तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था और हिंसामय यज्ञ-याज्ञ आदि से मुक्ति दिलाकर सर्वसाधारण के लिये निवृत्ति-प्रधान श्रमण सम्प्रदाय की स्थापना करना था। अतः इन दोनों ही सम्प्रदायों में समानता का होना अत्यन्त स्वाभाविक था। त्रिपिटक एवं आगम के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों की समानता मात्र विषयवस्तु के वर्णन तक ही सीमित नहीं है बल्कि कितनी ही गाथाएं और शब्दावलियां भी समान हैं। दोनों शास्त्रों का वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक अध्ययन मनोरंजक और उपयोगी हो सकता है।

आगम भगवान् महावीर के उपदेशों का संकलन है। ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् लोकहित में श्रमण महावीर यावज्जीवन जम्बूद्वीप के नाना गाँव, निगम, जनपद आदि में घूम-घूमकर उपदेश करते रहे। उन दिनों सूत्रों को कण्ठाग्र रखने की परम्परा थी। आगमों को सुव्यवस्थित बनाये रखने हेतु समय-समय पर जैन श्रमणों के सम्मेलन होते थे। उन सम्मेलनों में, उनके गणधरों ने भगवान् के उपदेशों को सूत्र रूप में निबद्ध किया। आगम साहित्य का निर्माण-काल पाँचवीं शताब्दी ई० पूर्व से लेकर पाँचवीं शताब्दी ई० तक माना जाता है। इस तरह से आगम एक हजार वर्ष का साहित्य कहा जा सकता है। ये आगम सूत्रमय शैली में होने के कारण अत्यन्त गम्भीर एवं दुरूह थे। इन्हें बोधगम्य बनाने के लिये समय-समय पर आचार्यों ने इन पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीकाएँ लिखीं। कथा लिखने की यह परम्परा ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर ईस्वी सन् की सोलहवीं शताब्दी तक चलती रही। साहित्य समाज का दर्पण होता है अतः ये आगम साहित्य, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, तत्कालीन भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। इनके सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें प्रचुर मात्रा में तत्कालीन सांस्कृतिक और सामाजिक विवरण प्राप्त हैं।

प्रस्तुत निबन्ध में हमारा प्रयास आगम साहित्य के आधार पर नारी का अध्ययन प्रस्तुत करना है। ग्रन्थों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि जैन आगम ने मनुस्मृति में आये नारी स्वरूप का ही पिष्टपेषण किया है। नारी के सम्बन्ध में वहाँ कहा गया है :—

जाया पितिव्वसा नारी दत्ता नारी पतिव्वसा।
विहवा पुत्तवसा नारी नत्थि नारी सयंवसा॥[1]

तुलनीय— **बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।**
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम्॥[2]

अर्थात् जब स्त्री पैदा होती है तो वह पिता के अधीन रहती है, विवाहोपरान्त पति के अधीन हो जाती है और विधवा होने पर पुत्र के अधीन हो जाती है। अर्थात् नारी यावज्जीवन परतंत्र रहती है। व्यवहार भाष्य के इस श्लोक को आगम साहित्य की नारी-सम्बन्धी

१. व्यवहार भाष्य-३, २३३
२. मनु० ५।१४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारणाओं का प्रतिनिधि-वाक्य माना जा सकता है। आगम साहित्य में स्त्रियों को विश्वासघाती, कृतघ्न, कपटी और अविश्वसनीय बताया गया है। फलस्वरूप इन पर कठोर नियंत्रण रखने का स्पष्ट निर्देश है। रामचरितमानस में संत तुलसी का नारी के सम्बन्ध में यह कथन यहाँ उल्लेखनीय है :—

विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुण खानी ॥[1]

एवं— **महावृष्टि चली फूटि कियारी। जिमि स्वतंत्र भय बिगरहि नारी ॥**[2]

आगम में स्त्रियों को प्रताड़ित करने के अनेक प्रसंग प्राप्त हैं। बृहत्कल्प भाष्य की यह कथा इस कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त मानी जा सकती है। कथा है कि एक पुरुष के चार पत्नियां थीं। उसने चारों को अपमानित कर गृहनिष्कासन का दण्ड दिया। उनमें से एक दूसरे के घर चली गई, दूसरी अपने कुलगृह में जाकर रहने लगी, तीसरी अपने पति के मित्रगृह में चली गई। परन्तु चौथी अपमानित होकर भी अपने पतिगृह में ही रही। पति ने इस पत्नी से प्रसन्न होकर उसे गृहस्वामिनी बना दिया।[3]

भावदेवसूरि के पार्श्वनाथ चरित्र में स्त्रियों के सम्बन्ध में जो भाव व्यक्त किया गया है, वह उनकी दयनीय स्थिति को और अधिक उजागर कर देता है। वहाँ कहा गया है कि एक ज्ञानी गंगा की रेत की मात्रा का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकता है, गंभीर समुद्र के जल को वह थाह सकता है, पर्वत के शिखरों की ऊँचाई का सही-सही माप कर सकता है, परन्तु स्त्री-चरित्र की थाह वह कतई नहीं पा सकता।[4] स्त्रियों को प्रकृति से विषम, प्रिय-वचन-वादिनी, कपट-प्रेमगिरि तटिनी, अपराध सहस्र का आलम, शोक उत्पादक, बल-विनाशक, पुरुष का वध-स्थान, वैर की खान, शोक की काया, दुश्चरित्र का स्थान, ज्ञान की स्खलना, साधुओं की अरि, मत्तगज सदृश कामी, बाघिनी की भांति दुष्ट, कृष्ण सर्प के सदृश अविश्वसनीय, वानर की भाँति चंचल, दुष्ट अश्व की भाँति दुर्धर्ष, अरतिकर, कर्कशा, अनवस्थित, कृतघ्न आदि-आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है। नारी पद की व्याख्या करते हुए कहा गया है—"नारी समान न नराणं अरओ" अर्थात् नारी के सदृश पुरुषों का कोई दूसरा अरि नहीं, अतएव वह नारी है। अनेक प्रकार के कर्म एवं शिल्प द्वारा पुरुषों को मोहित करने के कारण महिला—**"नाना-विधेहि कम्मेहि सिप्पइयाएहि पुरिसे मोहति"**, पुरुषों को उन्मत्त बना देने के कारण प्रमदा—'पुरिसे मत्ते करेंति', महान् कलह करने के कारण महिलया—**'महंतं कीलं जणयंति'**, पुरुषों को हाव-भाव द्वारा मोहित करने के कारण रमा—**"पुरिसे हावभावमाइएहिं रमंति"**; शरीर में राग-भाव उत्पन्न करने के कारण अंगना—**"पुरिसे अंगाणुराए करिंति"**, अनेक युद्ध, कलह, संग्राम, शीत-उष्ण, दुःख-क्लेश आदि उत्पन्न होने पर पुरुषों का लालन करने के कारण ललना—**"नाणाविहेसु जुद्धभंडणसंगामाडवीसु नहारणगिण्हणसीउण्हदुक्खकिलेसमाइएसु पुरिसे लालंति"**, योग-नियोग आदि द्वारा पुरुषों को वश में करने के कारण योषित्—**'पुरिसे जोगनिओगेहिं वसे ठावंति'** तथा पुरुषों का अनेक रूपों द्वारा वर्णन करने के कारण वनिता—**'पुरिसे नानाविहेहि भावेहिं वण्णंति'** कहा गया है।[5] इस आशय का आवश्यकचूर्णी का यह श्लोक उल्लेखनीय है :—

अन्नपानैर्हरेद्बालां, यौवनस्थां विभूषया।
वेश्यास्त्रीमुपचारेण वृद्धां कर्कशसेवया ॥[6]

वे स्वयं रोती हैं, दूसरों को रुलाती हैं, मिथ्याभाषण करती हैं, अपने में विश्वास पैदा कराती हैं, कपटजाल से विष का भक्षण करती हैं, वे मर जाती हैं परन्तु सद्भाव को प्राप्त नहीं होती हैं। महिलाएँ जब किसी पर आसक्त होती हैं तो वे गन्ने के रस के समान अथवा साक्षात् शक्कर के समान प्रतीत होती हैं लेकिन जब वे विरक्त होती हैं तो नीम से भी अधिक कटु हो जाती हैं। युवतियां क्षण भर में अनुरक्त और क्षण भर में विरक्त हो जाती हैं। हल्दी के रंग के जैसा उनका प्रेम अस्थायी होता है। हृदय से निष्ठुर होती हैं तथा शरीर, वाणी और दृष्टि से रम्य जान पड़ती हैं। युवतियों को सुनहरी छुरी के समान समझना चाहिये।[7] उत्तराध्ययन टीका में स्त्रियों को अति-क्रोधी, बदला लेने वाली, घोर विष, द्विजिह्व और द्रोही कहा है।[8] बौद्ध साहित्य के अंगुत्तरनिकाय में इसी से मिलता-जुलता वर्णन मिलता है। वहाँ स्त्रियों को आठ प्रकार से पुरुष को बांधने वाली कहा गया है—रोना, हँसना, बोलना,

१. रामचरितमानस-२३३-३
२. वही ३३३-२०
३. बृहत्कल्पभाष्य-१,१२५६, पिण्डनिर्युक्ति ३२६ आदि
४. विन्तरनित्ज, हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५७५
५. तन्दुलवैचारिक, पृ० ५० आदि, द्रष्टव्य—कुणाल-जातक, असातमंत जातक आदि
६. आवश्यकचूर्णी, पृ० ४६२
७. डा० जे० सी० जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० २४७
८. उत्तराध्ययन टीका ४, पृ० ९३ आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक तरफ हटना, भ्रूभंग करना, गंध, रस और स्पर्श। स्त्री रूप, स्त्री शब्द, स्त्री गंध, स्त्री रस और स्त्री स्पर्श पुरुषों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करता है।[1]

राजा को तो स्त्रियों से और भी बचकर रहने हेतु कहा गया है। स्त्रियों से पुनः-पुनः मिलना उनके लिये खतरे का निमन्त्रण बताया गया है। स्त्री गृह में राजा के प्रवेश की तुलना सर्प बिल में मण्डूक के प्रवेश से की गई है। आगम साहित्य में अनेक बार यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार स्त्रियों की माया में पड़ कर अनेक राजाओं ने अपना विनाश आमंत्रित किया।

स्त्रियों को शिक्षा कुशल गृहिणी मात्र बनाने के लिये दी जाय—"**नातीव स्त्रियः व्युत्पादनीयाः स्वभावसुभगोऽपि शस्त्रोपदेशः।**" स्त्रियों का कर्त्तव्य एवं अधिकार अपने पति तथा बच्चों की सेवामात्र ही निर्धारित है। पुरुषों के कार्यक्षेत्र में उनका हस्तक्षेप सर्वथा वर्जित था। उन्हें चंचल कहा गया है। उनके मानसिक स्तर की चंचलता की तुलना कमल-पत्र पर गिरे जल-बिन्दु से की गयी है, जो पतन के अनन्तर शीघ्र ही फिसल जाता है। वैसे पुरुषों की गति नदी की तेज धार में गिरे वृक्ष के सदृश बताई गई है जिसे दीर्घकाल तक जल के थपेड़ों को सहना पड़ता है। आगमों का यह नित्यमत है कि स्त्रियां पुरुष के नियन्त्रण में रहकर ही रक्षित एवं इच्छित की प्राप्ति कर सकती हैं। जिस प्रकार असि पुरुष के हाथ में रहकर ही शोभता है उसी प्रकार स्त्री भी पुरुषाश्रय में ही शोभित होती है। इस कथन की पुष्टि 'नीतिवाक्यामृत' के इन श्लोकों में से हो जाती है :—

अपत्यपोषणे गृहकर्मणि शरीर-संस्कारे।
शयनावसरे स्त्रीणां स्वातंत्र्यं नान्यत्र॥

स्त्रीवशपुरुषो नदीप्रवाहपतितपादप इव न चिरं नन्दति।
पुरुषमुष्टिस्था स्त्री खड्गयष्टिरिव कमुत्सवं न जनयति॥[2]

स्त्रियों को दृष्टिवाद सूत्र, महापरीक्षा सूत्र एवं अरुणोपात सूत्र का अध्ययन निषिद्ध है।[3] इनके निषेध का कारण इन सूत्रों में सर्वकामप्रद विद्यातिशयों का वर्णन है। इसके साथ ही स्त्रियों को शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से कमजोर, अहंकारबहुल एवं चंचला कहा गया है। चूंकि ये सूत्र इनकी शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से ग्राह्य नहीं हो सकते अतः नारी के लिये इनका अध्ययन निषिद्ध है। इतना ही नहीं, भिक्षुओं की तुलना में भिक्षुणियों के लिये अधिक कठोर विनय के नियमों का विधान जैन एवं बौद्ध सम्प्रदाय में है। इसकी पराकाष्ठा तो इस उल्लेख से होती है जिसमें तीन वर्ष की पर्याय वाला निर्ग्रन्थ तीस वर्ष की पर्याय वाली श्रमणी का उपाध्याय तथा पांच वर्ष की पर्याय वाला निर्ग्रन्थ साठ वर्ष की पर्याय वाली श्रमणी का आचार्य हो सकता है। इतना ही नहीं, शतायु साध्वी को भी एक नवदीक्षित भिक्षु के आगमन पर श्रद्धापूर्वक आसन से उठ अभिनन्दन करने का आदेश है। बौद्ध धर्म में भी आठ गुरु धर्मों के अन्तर्गत बताया गया है कि यदि कोई भिक्षुणी सौ वर्ष की पर्याय वाली हो तो भी शीघ्र प्रव्रजित भिक्षु का अभिवादन करना चाहिए और उसे देखते ही सम्मान से आसन से उठ जाना चाहिये।[4]

जैन सूत्रों में स्त्रियों को मैथुनमूलक बताया गया है जिनके कारण अनेकानेक संग्राम हुए। इस सम्बन्ध में सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, कंचना, रक्तसुभद्रा, अहिन्निका, सुवन्नंगुलिया, किन्नरी, सुरूपा आदि का नाम उल्लेखनीय है।[5]

स्त्रियों के सम्बन्ध में इन हेय विचारों के अतिरिक्त आगम ग्रन्थों में कुछेक प्रशस्ति-वाक्य भी प्राप्त हैं। ये सामान्यतया साधारण समाज द्वारा मान्य नहीं हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि स्त्रियों के आकर्षक सौन्दर्य से कामुकतापूर्ण साधुओं की रक्षा के लिये, स्त्री-चरित्र को लांछित करने का प्रयत्न है। विषय-विलास और आत्मकल्याण में आग-पानी का सा विरोध है। इसलिये अखिल जीव कोटि के कल्याण में संलग्न श्रमण सम्प्रदाय विषय-विलास की प्रधान साधन रूप 'उस नारी' की भरपेट निन्दा न करते तो क्या करते? ऐसी निन्दा से, ऐसी दोष-दृष्टि से ही तो उस ओर वैराग्य उत्पन्न होगा। इसके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों की तत्कालीन रचनाओं के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि स्त्रियां कैसे दुनियाँ भर के दोषों की खान हो गईं और वह भी विशेषकर जैन और बौद्ध काल में। बृहत्संहिता के रचयिता वराहमिहिर ने स्त्रियों के प्रति आगम के इस भाव का विरोध करते हुए कहा है—"जो

---

१. अंगुत्तर निकाय-३, ८ पृ० ३०६, वही १०, १, पृ० ३
२. आचार्य सोमदेव, नीतिवाक्यामृत, पृ० २४-४६, २४-४२
३. व्यवहार ७.१५-१६; ७.४०७
४. चूल्लवग्ग-१०, १-२, पृ० ३७४-५
५. प्रश्नव्याकरण-१६ पृ० ८५ अ, ८६ अ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष स्त्रियों में दिखाये गये हैं वे पुरुष में भी मौजूद हैं। अन्तर इतना है कि स्त्रियाँ उनको दूर करने का प्रयत्न करती हैं जबकि पुरुष उनसे बिलकुल उदासीन रहते हैं। पुरुष समाज उसे दोष ही नहीं मानते। उदाहरण देते हुए वराहमिहिर ने कहा है कि विवाह की प्रतिज्ञाएँ वर-वधू दोनों ही ग्रहण करते हैं किन्तु पुरुष उनको साधारण मानकर चलते हैं जबकि स्त्रियाँ उन पर आचरण करती हैं। उन्होंने प्रश्न उठाया है कि कामवासना से कौन अधिक पीड़ित होता है? पुरुष जो कामवासना की तृप्ति हेतु वृद्धावस्था में भी विवाह करता है या वह स्त्री जो बाल्यावस्था में विधवा हो जाने पर भी सदाचरण का जीवन व्यतीत करती है? पुरुष जब तक उसकी पत्नी जीवित रहती है, तब तक उससे प्रेम-वार्त्तालाप करते हैं परन्तु उसके मरते ही दूसरी शादी रचाने में नहीं झकुचाते। उसके विपरीत स्त्रियां अपने पति के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करती हैं। पति की मृत्योपरान्त पति के साथ चिता में भस्म हो जाती हैं। अब सुधीजन यह निर्णय कर सकते हैं कि प्रेम में कौन अधिक निष्कपट है—पुरुष या महिला?[1]

स्त्रियों के शुक्लपक्ष के वर्णन में भी आगम पीछे नहीं हैं। वहाँ अनेक ऐसी स्त्रियों का वर्णन मिलता है जो पतिव्रता रही हैं। तीर्थंकर आदि महापुरुषों को जन्म देने वाली भी तो स्त्रियां ही थीं। अनेकानेक स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो गतपतिका, मृतपतिका, बालविधवा, परित्यक्ता, मातृरक्षिता, पितृरक्षिता, भ्रातृरक्षिता, कुलगृहरक्षिता और स्वसुकुलरक्षिता कही गई हैं।[2] स्त्रियों को चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में गिनाया गया है।[3] संकट काल में स्त्रियों की रक्षा सर्वप्रथम करने को कहा गया है। मल्लिकुमारी को (श्वेता०) में तीर्थंकर कह कर सम्बोधित किया गया है। भोजराज उग्रसेन की कन्या राजीमती का नाम जैन आगम में आदरपूर्वक उल्लिखित है।[4] विवाह के अवसर पर बाड़ों में बंधे हुए पशुओं का चीत्कार सुनकर अरिष्टनेमि को वैराग्य हो गया तो राजीमती ने भी उनके चरण-चिह्न का अनुगमन कर श्रमण दीक्षा ग्रहण की। एक बार अरिष्टनेमि, उनके भाई रथनेमि और राजीमती तीनों गिरनार पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। वर्षा के कारण राजीमती के वस्त्र गीले हो गये। उसने अपने वस्त्रों को निचोड़कर सुखा दिया और पास की गुफा में खड़ी हो गई। संयोग से रथनेमि भी गुफा में ध्यानावस्थित थे। राजीमती को निर्वस्त्र अवस्था में देखकर उनका मन चलायमान हो गया। उसने राजीमती को भोग भोगने के लिए आमंत्रित किया। राजीमती ने इसका विरोध किया। उसने मधु और घृत युक्त पेय का पान कर ऊपर से मदन फल खा लिया, जिससे उसे वमन हो गया। रथनेमि को शिक्षा देने के लिये वमन को वह पेय रूप में प्रदान कर कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने में सहायक हुई।[5]

आगम ग्रन्थों के स्त्री के सम्बन्ध में इन द्वन्द्वात्मक विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जहां कहीं स्त्री चरित्र के कृष्णपक्ष का वर्णन है वह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का उद्दीपन है, इसमें आगमकारों के किसी व्यक्तिगत मत का द्योतन नहीं। स्त्री योनि में उत्पन्न होने के कारण जीवन के चरमोद्देश्य की प्राप्ति में उनका स्त्रीत्व बाधक नहीं बताया गया है। आगम ग्रन्थों में अनेक ऐसे उदाहरण प्राप्त हैं जिनमें महिलाओं ने संसार त्यागकर परमपद की प्राप्ति की एवं जनता को सन्मार्ग पर लाने का हर संभव प्रयास किया। ऐसी महिलाओं में ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना, मृगावती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन संघ में आचार्य चन्दना को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। इनके नेतृत्व में अनेक साध्वियों ने सम्यक् चारित्र का पालन कर मोक्ष की प्राप्ति की।[6] श्रमण महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजघरानों की स्त्रियां सांसारिक ऐश्वर्य को छोड़कर साध्वी बनगई थीं। कोशाम्बी के राजा शतानीक की भगिनी का नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।[7] शारीरिक एवं मानसिक गुणों में कतिपय स्थानों पर स्त्रियों के सम्बन्ध में आगम साहित्य का अत्यन्त ही व्यावहारिक एवं जनग्राह्य मत का निदर्शन आचार्य सोमदेव का नीतिवाक्यामृतं का यह कथन करता है—

सर्वाः स्त्रियः क्षीरोदवेला इव विषामृतस्थानम्।
न स्त्रीणां सहजो गुणो दोषो वास्ति।
किन्तु नद्यः समुद्रमिव यादृशं गतिम्
आप्नुवन्ति तादृश्यो भवन्ति स्त्रियः।[8]

---

१. बृहत्संहिता ७६.६.१२, १४, १६ तथा ए० एस० अल्तेकर द पोजीसन ऑव वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन, पृ० ३८७
२. औपपातिक सूत्र-३८, पृ० १६७-८
३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ३.६७, उत्तराध्ययन टीका १८, पृ० २४७ अ
४. बृहत्कल्पभाष्य-४.४३३४-३६
५. दशवैकालिक सूत्र २.७-११, इत्यादि-इत्यादि
६. अन्तकृद्दशा-५, ७, ८
७. व्याख्या प्रज्ञप्ति-१२.२, पृ० ५५६
८. आचार्य सोमदेव, नीतिवाक्यामृतम्-२४, १० और २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् स्त्रियां नवनीत के सदृश हैं जो दुरुपयोग से विषवाहक एवं सदुपयोग से अमृत का वाहन करने वाली होती हैं। स्त्रियों को नदी के जल के सदृश कहा गया है जो समुद्र में मिलकर अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को समाप्त कर समुद्र का जल हो जाता है। इसी प्रकार स्त्रियां अपने पति में समाहृत होकर अपने त्याग की पराकाष्ठा को ही द्योतित करती हैं।

आगम ग्रन्थों के स्त्रियों के प्रति इन सामान्य धारणाओं के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहाँ पुरुषों से इन्हें हीन दिखाने का प्रयास नहीं, अपितु कैवल्य प्राप्ति के उद्देश्य से प्रव्रजित भिक्षुओं का उनके प्रति विकर्षण मात्र उत्पन्न करना है।

विवाह :—आगम ग्रन्थों में स्त्रियों के सम्बन्ध में सामान्य धारणाओं के विवेचन के उपरान्त उनकी सामाजिक स्थिति के सच्चे वर्णन हेतु तत्कालीन विवाह-प्रणाली की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। विवाह का हिन्दू संस्कारों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिकांश गृहसूत्र का प्रारम्भ विवाह संस्कार से होता है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण तो ऋग्वेद[1] एवं अथर्ववेद[2] में इसकी काव्यमय अभिव्यक्ति हैं। विवाह को यज्ञ का स्थान प्राप्त था। अविवाहित व्यक्ति को अयज्ञिय अथवा यज्ञहीन कहा जाता था।[3] जब तीन ऋणों के सिद्धान्त का विकास हुआ तो विवाह को अधिकाधिक महत्त्व और पवित्रता प्राप्त होने लगी।[4] एकाकी पुरुष तो अधूरा है, उसकी पत्नी उसका अर्धभाग है, ऐसी धारणायें विवाह के साथ ही स्त्रियों के प्राचीन भारत में महत्त्व को भी दर्शाती हैं।

अनेक कारणों से भारतवर्ष में विवाह को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। निस्सन्देह, मानव विकास के पशुपालन और कृषि-युग में इस आदर या महत्त्व के मूल में अनेक आर्थिक और सामाजिक कारण विद्यमान थे। कालक्रम से हिन्दू धर्म में सामाजिक तथा आर्थिक कारणों की अपेक्षा देवताओं एवं पितरों की पूजा ही विवाह का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाने लगा। भारत के सदृश ही अन्य प्राचीन राष्ट्र, यथा इसराइल, यूनान, स्पार्टा, रोम आदि में भी विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता था।[5] प्लूटार्क के अनुसार स्पार्टा में अविवाहित व्यक्ति अनेक अधिकारों से वंचित कर दिये जाते थे और युवक अविवाहित वृद्धों का सम्मान नहीं करते थे।[6] हाँ ईसाई धर्म विवाह के सम्बन्ध में थोड़ा इतर विचार वाला अवश्य प्रतीत होता है।[7] जो भी हो, उपर्युक्त विवरण के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि विवाह के मूल में सम्भवतः नवजात शिशु की पूर्ण असहायावस्था तथा विभिन्न अवधियों के लिये माता एवं नवजात शिशु की रक्षा एवं उनके लिये उस अवधि में भोजन की आवश्यकता थी। इस प्रकार विवाह का मूल परिवार में निहित प्रतीत होता है, विवाह में परिवार का नहीं। स्त्री और पुरुष के स्थायी सम्बन्ध की जड़ ही पैतृक कर्त्तव्यों में निहित है। पुत्र के लिये कामना, शिशु तथा पत्नी की रक्षा, गार्हस्थ्य जीवन की आवश्यकता तथा पारिवारिक जीवन का आदर्श वैवाहिक विधि-विधानों एवं कर्मकाण्डों में वर्णित हैं। हिन्दू संस्कार पूर्ण विकसित, साङ्गोपाङ्ग, स्थायी तथा नियमित विवाह को ही मान्यता प्रदान करता है। स्पष्ट है कि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विवाह स्त्री-पुरुष के बीच एक अस्थायी गठबन्धन नहीं, अपितु एक आध्यात्मिक एकता है। इसी एकता का वह परमपवित्र बंधन कहा जा सकता है जो दैवी विधान एवं धर्मशास्त्रों के साक्ष्य में सम्पन्न होता है। आगम साहित्य में भी विवाह के सम्बन्ध में इसी प्रकार की सामान्य धारणा मिलती है।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विवाह की प्राचीनता, आवश्यकता एवं उपयोगिता की रूपरेखा जानने के पश्चात् विवाह योग्य वय एवं प्रकार का जानना आवश्यक प्रतीत होता है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के मंत्रों से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि वैदिक काल में वर-वधू इतने प्रौढ़ होते थे कि स्वयं अपने सहयोगी का चुनाव करते थे।[8] वर से यह अपेक्षा की जाती थी कि उसका अपना एक स्वतन्त्र घर हो और जिसकी साम्राज्ञी उसकी पत्नी हो, भले ही उस घर में वर के माता-पिता भी क्यों न रहते हों। गार्हस्थ्य जीवन में पत्नी को सर्वोच्च स्थान दिया जाता था।[9] स्पष्ट है कि बाल-विवाह का प्रचलन नहीं था। जैन आगमों में विवाह योग्य वय का कोई निश्चित वर्णन नहीं

---

१. ऋग्वेद ९०-८५
२. अथर्ववेद-१४.१.२
३. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः—तै० ब्रा० २.२.२६
४. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मयज्ञेन ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजा पितृभ्यः—तै० सं० ६.३.१०.५
५. विलिस्टाइन गुडसेल 'ए हिस्ट्री ऑव द फैमिली एज ए सोशल एण्ड एजुकेसनल इंस्टिट्यूशन, ५-५८
६. लाइफ ऑव लिकर्गस, बॉन्स क्लासिकल लाईब्रेरी, भा० १, पृ० ८१
७. विलिस्टाइन गुडसेल 'ए हिस्ट्री ऑव द फैमिली एज ए सोशल एण्ड एजुकेशनल इंस्टिट्यूसन पृ० ८०
८. ऋग्वेद ८.५५, ५, ८
९. अथर्ववेद १४, १-४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता। पिण्डिनिर्युक्ति टीका में इस सम्बन्ध में कुछ संकेत प्राप्त है। वहां एक लोकश्रुति का उल्लेख मिलता है कि यदि कन्या रजस्वला हो जाय तो जितने उसके रुधिर-बिन्दु गिरें, उतनी ही बार उसकी माता को नरकगामी होना पड़ता है।[1]

स्मृतियों में विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख है, यथा—ब्राह्म, दैव, ऋषि, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच।[2] इनमें से कुछ का मूल वैदिक काल में भी मिलता है। विभिन्न गृहसूत्रों में विवाह के भिन्न-भिन्न प्रकार बताये गये हैं। परन्तु ये आठ प्रकार प्रकारान्तर से सभी गृहसूत्रों में उल्लिखत हैं।

आगम ग्रन्थों में विवाह के तीन प्रकार का वर्णन है। सजातीय विवाह की परम्परा का ही प्राबल्य था। विवाह में जातीय समानता के साथ ही आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय पर भी ध्यान दिया जाता था। समान आर्थिक स्थिति एवं समान व्यवसाय वालों के साथ ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। ऐसा करने में उनका मुख्य उद्देश्य वंश परम्परा की शुद्धि था। निम्न जाति एवं निम्न आर्थिक स्थिति वालों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने से कुल की प्रतिष्ठा के भंग होने का भय होता था। जातक कथाओं में भी इसी प्रकार के समान जाति, समान आर्थिक स्थिति एवं समान व्यवसाय वालों में विवाह का वर्णन मिलता है। बहु विवाह का भी प्रचलन था। ज्ञाताधर्म कथा में मेघकुमार द्वारा समान वय, समान रूप, समान गुण, और समान राजोचित पद वाली आठ कन्याओं से विवाह करने का उल्लेख है।[3] विवाह की इस सामान्य परम्परा का कुछ अपवाद भी आगमों में वर्णित है। उदाहरण के लिये राजमंत्री तेयलिपुत्र ने एक सुनार की कन्या से विवाह किया था।[4] अन्तःकृद्दशा में क्षत्रिय गजसुकुमाल का ब्राह्मण कन्या से तथा राजकुमार ब्रह्मदत्त का ब्राह्मण और वणिकों की कन्याओं से विवाह हुआ था—ऐसा वर्णन प्राप्त है। उत्तराध्ययन टीका में राजा जितशत्रु का चित्रकार कन्या से विवाह का वर्णन है। विजातीय विवाह के इस अपवाद के साथ ही विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच भी विवाह के कतिपय उदाहरण मिलते हैं। राजा उद्रायण जो तापसों का भक्त था उसका विवाह प्रभावती से हुआ था जो श्रमणोपासिका थी।[5] श्रमणोपासिका सुभद्रा का विवाह बौद्धधर्मानुयायी से होने का प्रमाण मिलता है।[6] विवाह-सम्बन्ध का निर्धारण परिवार के वयोवृद्ध आपसी परामर्श से करते थे। वृद्धों के निर्णय में वर का मौन रहना स्वीकृति मानी जाती थी।[7]

विवाह में वर अथवा उसके पिता द्वारा, कन्या के पिता अथवा उसके परिवार को शुल्क देने की परम्परा थी। ज्ञाताधर्मकथा में कनकरथ राजा के मंत्री तेमलि पुत्र एवं पोट्टिला मूषिकदारक कन्या के विवाह में शुल्क का वर्णन मिलता है। आवश्यकचूर्णी में एक व्यापारी का वर्णन आया है जो अपनी पत्नी से अप्रसन्न रहा करता था। उसने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया और बहुत-सा शुल्क देकर दूसरा विवाह किया। इसी तरह एक चोर ने अपने चौर्य कर्म से अपरिमित धन संग्रह कर, यथेच्छ शुल्क दे किसी कन्या से विवाह किया। चम्पा के कुमारनदी स्वर्णकार ने पाँच-पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा देकर अनेक सुन्दरी कन्याओं से विवाह किया था।[8] शुल्क के अतिरिक्त विवाह-प्रसंग में आगम प्रीतिदान का उल्लेख करता है। मेघकुमार द्वारा आठ राज-कन्याओं से विवाह करने के अवसर पर मेघकुमार के माता-पिता ने अपने पुत्र को विपुल धन प्रीतिदान में दिया। मेघकुमार ने इसे अपनी आठों पत्नियों में बांट दिया।

आज की तरह आगम काल में दहेज की विभीषिका नहीं थी। यद्यपि कन्या को माता-पिता द्वारा दहेज देने का वर्णन कहीं-कहीं प्राप्त होता है। उपासकदशा में राजगृह के गृहपति महाशतक के रेवती आदि तेरह पत्नियों द्वारा दहेज में प्राप्त धन का विस्तार से वर्णन है।[9] प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया में वाराणसी के राजा द्वारा अपने जमाई को १,००० गांव, १,००० हाथी, बहुत-सा माल खजाना, एक लाख सिपाही और १०,००० घोड़े दहेज में देने का उल्लेख आया है।[10]

---

१. पिण्डिनिर्युक्ति टीका – पृ० ५०९

२. ब्राह्मो दैवस्तथा आर्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ मनु स्मृ० ३.२१, याज्ञवल्क्य स्मृति १.५८-६१

३. ज्ञातधर्मकथा १, पृ० २३

४. वही १४, पृ० १४८

५. आवश्यकचूर्णी १, पृ० २३

६. दशवैकालिकचूर्णी—पृ० ३९९

७. ज्ञातधर्मकथा– १६, पृ० १६८

८. आवश्यकचूर्णी—पृ० ८९

९. उपासक दशा० ४, पृ० ६१, अल्तेकर—पृ० ८२-८४

१०. मेहता—प्री० बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० २८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त आगमकालीन वैवाहिक परम्परा, विधि-विधान, आयोजन, आवश्यकता, पवित्रता आदि विचार हिन्दू शास्त्रों से मिलते-जुलते हैं। कुछ छोटे-मोटे सामान्य विभेद के साथ पूर्णतया हिन्दू विवाह-प्रणाली ही आगम विवाह, प्रणाली मानी जा सकती है।

गणिका :—आगमकालीन भारतीय नारी का सच्चा चित्र उपस्थित करने हेतु नारी जाति की एक प्रमुख संस्था गणिका के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण भी इष्ट प्रतीत होता है।

गणिका भारतीय समाज की एक अत्यन्त प्राचीन संस्था है। ऋग्वेद में गणिका के लिए नृतु शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] वाजसेनीय संहिता में वेश्यावृत्ति को एक पेशा स्वीकार किया गया है। स्मृतियां इस पेशे को सम्मानजनक नहीं बताती हैं।[2] बौद्ध साहित्य में गणिकाओं को सम्माननीय स्थान दिया गया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गणिकाओं का समाज में सम्मानजनक स्थान का उल्लेख मिलता है। राजाओं द्वारा उन्हें छत्र, चमर, सुवर्ण घट आदि प्रदान कर सम्मान देने की बात कही गई है। वात्स्यायन के काममूत्र में वेश्याओं का विशद वर्णन है। वहां वेश्याओं को कुंभदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाश विनष्टा, रूपाजीवा एवं गणिका—इन नौ भागों में विभक्त किया गया है। इन नौ विभाजनों में सर्वश्रेष्ठ राजा द्वारा पुरस्कृत को कहा गया है।[3] उदान की टीका परमत्थदीपनी में इसे नगरशोभिणी कहा गया है। गणिका तत्कालीन समाज का एक सदस्य मानी जाती थी। आर्थिक एवं राजनैतिक गणों से सम्बन्धित व्यक्तियों की सम्पत्ति मानी जाती थी।[4] मनुस्मृति में गण और गणिका द्वारा दिया हुआ भोजन ब्राह्मणों के लिए अस्वीकार्य बताया गया है।[5] मूलसर्वास्तिवादियों के विनयवस्तु में आम्रपालि को वैशाली के गण द्वारा भोग्य कहा गया है।[6] आचार्य हेमचन्द्र के भव्यानुशासन-विवेक में गणिका की परिभाषा करते हुए कहा गया है—"**कलाप्रागल्भ्यधौर्त्याभ्यां गणयति कलयति गणिका।**"[7] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य लोगों के द्वारा गणिका आदरणीय मानी जाती थी। वात्स्यायन के अनुसार वह सुशिक्षित और सुसंस्कृत तथा विविध कलाओं में पारंगत होती थी।[8] गणिका को गणिकाओं के आचार-व्यवहार की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी। गणिकाओं के अभिषेक का वर्णन भी मिलता है।[9] प्रधान गणिका का बड़े ही धूम-धाम से अभिषेक किया जाता था। बृहत्कल्पभाष्य में किसी रूपवती को वशीकरण आदि द्वारा वश में करके उसे गणिका के पद पर नियुक्त करने का उल्लेख मिलता है। नगरशोभिणी का सम्बन्ध किसी खास संभ्रान्त पुरुष से होता था। जनसाधारण की उपभोग्य वस्तु वह नहीं होती थी। प्रेमी पुरुष के परदेश-गमन पर वह कुलवधू की तरह विरहिणी व्रत का पालन करती थी। मृच्छकटिक की वसंतसेना, कुट्टिनीमत की हारलता, कथा-सरित्सागर की कुमुदिका आदि इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं।

साध्वी संघ :—श्रमण महावीर के चतुर्विध संघ में साध्वी संघ का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इनका जीवन भिक्षावृत्ति से चलता था। इन्हें एक अनुशासित एवं नियंत्रित जीवन व्यतीत करना होता था। संघ के विधान के अनुसार ये साध्वियाँ भिक्षुओं द्वारा आरक्षित होती थीं। कुत्सित आचरणवाले पुरुषों से इनकी रक्षा के लिये इनके निवास स्थान में किवाड़ का प्रबन्ध होता था। कपाट के अभाव में भिक्षु संवरी का कार्य करते थे। किसी भी कारण से साध्वी यदि गर्भवती हो जाती तो उसे संघ से निष्कासित नहीं किया जाता था, अपितु उस पुरुष का पता कर राजा द्वारा दण्ड दिलवाया जाता था जिससे भविष्य में इस प्रकार के दुराचरण की पुनरावृत्ति न हो। परन्तु इसके बावजूद भी साध्वियों के गर्भवती होने की चर्चा आगम ग्रंथों में प्राप्त है। बौद्ध साहित्य के जातक कथा के मातंग जातक में उल्लेख है कि किसी मातंग ने अपने अंगूठे से अपनी पत्नी की नाभि का स्पर्श किया, और वह गर्भवती हो गई।[10] इसी तरह धम्मपद अट्ठकथा में उप्पलवण्णा के साथ श्रावस्ती के अंधकवन में किसी ब्रह्मचारी के द्वारा बलात्कार करने का जिक्र है।[11]

---

१. वैदिक इण्डेक्स—१, पृ० ४५७
२. याज्ञवल्क्यस्मृति १, पृ० ४५७
३. पेन्जर कथासरित्सागर
४. चकलदार-स्टडीज इन वात्स्यायन कामसूत्र—१९९
५. मनुस्मृति—४-२०९
६. विनय वस्तु—१७
७. काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) पृ० ४१८
८. चकलदार-स्टडीज इन वात्स्यायन कामसूत्र पृ० १९८
९. आवश्यक चूर्णी—२९७
१०. मातंग जातक, पृ० ५८६
११. धम्मपद अट्ठकथा २, पृ० ४९-५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वियों के अपहरण करने का वर्णन भी आगम में मिलता है। कालकाचार्य की साध्वी भगिनी सरस्वती को उज्जैनी के राजा गर्दभिल्ल द्वारा अपहरण कर अन्तःपुर में रखने का वर्णन प्राप्त है। बृहत्कल्पभाष्य में एक कथा आई है जिसमें भृगुकच्छ के एक बौद्धवणिक् ने एक साध्वी के रूपलावण्य से मोहित हो, जैन श्रावक बन, कपट भाव से उन्हें अपने जहाज में चैत्य-वन्दन करने के लिये आमंत्रित किया। साध्वी के जहाज में पैर रखते ही उसने जहाज खुलवा दिया।[1] साध्वियों को चोर उचक्के भी कष्ट पहुंचाया करते थे। इस विपन्नावस्था में साध्वियों को अपने गुह्य स्थान की रक्षा चर्मखण्ड, शाक के पत्ते या अपने हाथ से करने का विधान मिलता है।[2]

जैन आगमों में साध्वियों को दौत्यकर्म करते हुए भी दर्शाया गया है। ज्ञातृधर्मकथा में मिथिला की चोक्खा परिव्राजिका का वर्णन मिलता है। उसे वेद शास्त्र तथा अन्य शास्त्रों का पण्डित कहा गया है। वह राजा, राजकुमारों आदि संभ्रान्त परिवारवालों को दानधर्म, शौचधर्म तथा तीर्थाभिषेक का उपदेश करती हुई विचरण करती थी। एक दिन वह अनेक परिव्राजिकाओं के साथ राजा कुम्भक की पुत्री मल्लिकुमारी को उपदेश दे रही थी। उपदेश-क्रम में राजकुमारी द्वारा पूछे कतिपय प्रश्नों का उत्तर न देने के कारण राजकुमारी ने उन्हें अपमानित कर अन्तःपुर से निष्कासित कर दिया। अपमानित हो, चोक्खा परिव्राजिका पञ्चाल देश के राजा जितशत्रु के पास पहुंची और मल्लिकुमारी के रूप लावण्य का वर्णन कर राजा को उसे प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया।[3] उत्तराध्ययन टीका में एक कथा आई है जिसमें एक परिव्राजिका बुद्धिल की कन्या रयणाबाई का प्रेम पत्र ब्रह्मदत्त कुमार के पास ले जाते हुए दिखाया गया है एवं ब्रह्मदत्त कुमार का उत्तर रयणाबाई को पहुंचाते बताया गया है।[4] दशवैकालिकचूर्णि में एक परिव्राजिका को एक युवक का प्रेम-संदेश एक सुन्दरी के पास ले जाते हुए दिखाया गया है। सुन्दरी द्वारा परिव्राजिका अपमानित होती है।[5]

कहीं-कहीं स्त्रियां पति को प्रसन्न करने के लिए अथवा पुत्रोत्पत्ति के लिये भी परिव्राजिकाओं की सहायता लेते देखी जाती हैं। तेयलीपुत्र आमाव्य की पत्नी पोट्टिला अपने पति को इष्ट नहीं थी। वह अपना समय साधु-साध्वियों की सेवा-उपासना में बिताया करती थी। एक दिन सुव्रता नाम की साध्वी पोट्टिला के पास आई। पोट्टिला ने साध्वी की उचित सत्कारोपरान्त निवेदन किया—"आप साध्वी हैं, अनुभवी हैं, बहुश्रुत हैं। मेरे पतिदेव मुझसे अप्रसन्न रहते हैं। कृपया कोई ऐसा उपाय बतायें जिससे मेरे स्वामी मुझ से प्रसन्न रहने लगें तो मैं आपकी कृतज्ञा रहूंगी। यह सुनकर सुव्रता कानों पर हाथ दे वहां से चली गई।[6] इसी तरह एक परिव्राजिका किसी स्त्री को अपने पति को वशीभूत करने हेतु अभिमंत्रित तण्डुल देते दिखाई गई है।[7] संतानोत्पत्ति के लिये मंत्र-प्रयोग, विद्या-प्रयोग, वमन, विरोचन आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है।[8]

आगम एवं तत्कालीन अन्य ग्रन्थों के अवलोकन के पश्चात् निगमन में कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनका स्थान, सम्मान कालक्रम से घटते-बढ़ते रहे हैं। कहीं तो उनकी प्रचुर प्रशंसा और कहीं उनकी घोर निन्दा की गई है। स्त्रियों के किसी कार्य विशेष के अवलोकन से उनके सम्बन्ध में मत निर्धारित किया जाता था एवं उसी के आधार पर उनके सम्बन्ध में सामान्य धारणाओं का विकास होता था। उनके आचार-व्यवहार ही उनकी सामाजिक स्वतंत्रता के मापदण्ड थे।

मनु के स्वर में स्वर मिलाते हुए जैन आगम भी स्त्रियों को अविश्वसनीय, कृतघ्न, धोखाधड़ी करने वाली आदि आदि विशेषणों से विशेषित करते हैं। स्त्रियों को सदा-सर्वदा पुरुषों के नियंत्रण में रहने का परामर्श दिया गया है। उनकी स्वतंत्रता उन्हें नाश को प्राप्त कराने वाली कही गई है। स्त्री-चरित्र अमापनीय कहा गया है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में इन हीन धारणाओं के साथ ही कुछ प्रशस्ति-वाक्य भी प्राप्त हैं। इन्हें चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में एक कहा गया है। श्वे०आगम सर्वोच्चपद (तीर्थंकर) प्राप्त महिला का भी वर्णन करता है। कई स्थानों में इन्हें पुरुषों को सन्मार्ग पर लाते

---

१. बृहत्कल्पभाष्य—१, २०५४
२. वही—१, २९८६
३. ज्ञातधर्मकथा ८, पृ० १०८-१०
४. उत्तराध्ययन टीका १३, पृ० १९१
५. दशवैकालिकचूर्णी २, पृ० ९०
६. ज्ञातधर्मकथा—१४, पृ० १५१
७. ओघनिर्युक्ति टीका—५९७, पृ० १९३
८. निरयावलि ३, पृ० ४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए दिखाया गया है। स्त्रियों को त्याग भाव से परिपूर्ण दिखाया गया है। त्याग में इनकी तुलना नदी के जल से की गई है जो नाना ग्राम-निगम-जनपदों से प्रवाहित हो समुद्र में मिल कर अपना भिन्नास्तित्व बिल्कुल भुला देता है। नदी के जल की तरह पत्नी भी पति से मिलकर तादात्म्य पा लेती है। वह अपना स्वतंत्रास्तित्व समाप्त कर अर्धाङ्गिणी कहलाने लगती है। स्त्री का यह त्याग उसकी महानता का परिचायक है। स्त्रियों के इन गुणों के कारण ही आगम ग्रन्थ उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यहां तक कि गणिका जिन्हें आज का समाज दीन-हीन दृष्टि से देखता है को आज भी आगम ग्रन्थों में एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। इनके महत्त्व और सम्माननीय सामाजिक स्थान का यहां अत्यन्त मनोरम वर्णन प्राप्त है। आज भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति विशेषकर लड़कियों के प्रति जो दीन-हीन विचार हैं उनका सर्वथा अभाव वहां दिखता है। कन्या तत्कालीन समाज की भार नहीं मानी जाती थी। वहां उसके शुभ्ररूप का ही दिग्दर्शन होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि आगम ग्रन्थ स्त्रियों के प्रति सम्मान और समभाव के पक्षपाती रहे हैं। जैन आगमों में जहां कहीं भी स्त्रियों की हीनावस्था का वर्णन मिलता है उसका मात्र उद्देश्य भिक्षुओं में स्त्रियों के प्रति विकर्षण पैदा करना ही है। काम-भोग और आत्मकल्याण की खोज ये दोनों दो छोर हैं। ये सिक्के के दो पहलू माने जा सकते हैं जो एक होकर भी कभी एक दूसरे से नहीं मिलते। इसलिये अखिल विश्व के प्राणियों के कल्याण हेतु रचित आगम ग्रन्थ काम-भोगों के प्रधान साधन रूप उस नारी की निन्दा न करते तो क्या करते? ऐसा करने में उनका मुख्य उद्देश्य विषय-विलास के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना था न कि मानव प्राणी में उनके प्रति घृणा का भाव पैदा करना।

आगम साहित्य में स्त्री का वर्णन वर्तमान भारतीय नर-नारी के लिये अनुकरणीय एवं उपयोगी प्रतीत होता है। पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित, उनके अन्धानुकरण में लीन, विषय-विलास के नशे में चूर भारतीय नवयुवक नवयुवतियां भारतीय परम्पराओं एवं सामाजिक नियमों की अवहेलना कर वासना के पीछे उन्मत्त हो रहे हैं। कविशिरोमणि, संत तुलसीदास ने रामचरितमानस में उनका अत्यन्त ही सच्चा चित्र खींचा है। वहां उन्होंने उनकी दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कहा है :—

नारि विवस नर सकल गोसाईं, नाचहि नर मरकट की नाई।
गुनमंदिर सुन्दर पति त्यागी, भजहि नारि पर पुरुष अभागी।

काश! भारतीय नवयुवक अपनी प्राचीन गरिमा के अनुकूल आगम में वर्णित आचार-संहिता का अनुपालन करते, जिनके अभाव में असामाजिक, कुत्सित विचारों का उद्भव हो रहा है, और वे भारतीय समाज को दुर्दशा की ओर अग्रसारित कर रहे हैं। काश! नारी के सम्बन्ध में हमारी स्वस्थ धारणाएं बनतीं। पुनः नारी अपनी प्राचीन खोई प्रतिष्ठा को प्राप्त करती। उन्हें हम सृष्टि की आधारशिला के रूप में देखते जिनके अभाव में हर रचना अधूरी और हर कला रंगहीन रह जाती है। काश! "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" का मंत्र पुनः घर-घर गुंजायमान होता।

भगवान् महावीर स्वामी की जन्मभूमि वैशाली नारी जाति को सम्मान देने के लिए विश्वविख्यात रही है। सम्राट् अजातशत्रु के अमात्य वर्षकार की जिज्ञासा का उत्तर देने के लिए भगवान् बुद्ध ने गृद्धकूट शिखर पर अपने प्रिय शिष्य आनन्द से सात प्रश्न किये थे। 'सत्त अपरिहाणि धम्म' के पाँचवें सूत्र का रोचक सम्वाद इस प्रकार है—

किन्ति ते आनन्द सुत वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न आक्कस्स पसय्ह वासेन्ती 'ति ?'
'सुतं मे तं भन्ते वज्जी या ता कुलित्थियो ···पे०··· वासेन्ती 'ति।'

'यावकीवज्ज आनन्द वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न आक्कस्स पसय्ह वासेस्सन्ति, बुद्धि येव आनन्द वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।'

श्रमण संस्कृति के उन्नायक महापुरुष वास्तव में नारी जाति के हितों के शुभचिन्तक थे। इसीलिए उन्होंने अपनी संघ व्यवस्था में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया था।

□ सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org